पण्डित श्रीराम दवे के शृंगारपरक खण्डकाव्यों का चिन्तन

डॉ. अवधेश कुमार मिश्र
व्याख्याता, संस्कृत
राजकीय विठ्लनाथ सदाशिव पाठक आचार्य
संस्कृत महाविद्यालय, कोटा (राज.)

शोध सारांश –

विधाता का अनमोल उपहार मानव है। मानवों में कवि का स्थान सर्वाधिक प्रधान होता है। कवि की कृति काव्य मानव मन की अनुभूतियों की साधु शब्दमयी अभिव्यक्ति है। इस प्रकार कवि और काव्य वाङ्मय धरा की दो ध्रुव धुरियाँ है, जिस पर साहित्य और समाज का वैभव टिका हुआ है। साहित्य और समाज का शाश्वत सम्बन्ध किसी से छुपा नहीं है। समाज में जो होता है, साहित्य में वहीं दिखता है। साहित्य के आईने में समाज को देखना कदाचित सहृदयों का रुचिकर विषय भी रहा है। जब किसी साहित्यकार के समक्ष समाज की स्थितियाँ, परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न स्वरुपों में उपस्थित होती है, तब वह दृष्ट परिस्थियों को शब्दों में पिरोकर छन्दों के साँचे में ढालकर, अलंकारादि से सजाकर रस–भावादि से अनुप्राणित करता है, तब रमणीयार्थ –प्रतीयमानार्थ को ध्वनित करने वाला किसी कमनीय काव्य का जन्म होता है। काव्य का जन्म समाज से ही होता है। समाज में ही वह पल्लवित पुष्पित होकर फलवान बनता है तथा सुधी सामाजिकों को मूल्यात्मक जीवन देता है।

मानव जीवन की शिक्षा तथा उनके मूल्यों की दीक्षा आदि सामाजिक–सांस्कृतिक अपेक्षा–उपेक्षा के तात्विक चिन्तनों का सुन्दरतम् साहित्य संस्कृत काव्य कृतियों को माना गया है। वैश्विक–धरा की सर्वाधिक समृद्ध भाषा के इन काव्यों में श्रेय और प्रेय का समन्वय दिखता है। इसमें जीवन–दर्शन की समग्रता और आत्मावलोकन की विशिष्टता परिलक्षित होती है। आत्म कल्याण, चरित्र निर्माण तथा इह लौकिक–पारलौकिक ज्ञान–विज्ञान के विधानों के विनियोग से व्यवस्थित मानव समुदाय को दिशा दिखाने वाली कृति के रुप में सिद्ध है, **संस्कृत काव्य** ।

कूट शब्द – साहित्यिक, सान्ध्यबेला, शृंगारोत्सव, धीवरकन्या, भिक्षुकयुवतियों, उन्मुक्तकामा

फिरंगीवामा, सौभाग्यवती, पुष्पांजली ।

Peer Reviewed

प्रस्तावना –

उत्तम कवि रत्नों की पंक्ति में हीरक–मणि के समान भास्वर कवि जिनके काव्यों में प्रवेश कर सरस्वती विविध लीला करती हुयी अपने सहज लालित्य से भावुक जनों को प्रसन्न करती है। ऐसे काव्यकार पं.श्रीराम दवे की अनुभवी लेखनी से **'सौन्दर्यलीलामृतम्'** आदि एकादश खण्डकाव्य लिखे गये। प्रत्येक खण्डकाव्य अपना स्वतंत्र एवं पृथक् महत्व रखता है। इनके खण्डकाव्यों में भारतभूमि एवं भारतीयता का समवाय–सम्बन्ध परिलक्षित होता है। समसामयिक विषय, युग्बोध परक वर्णन एवं एक आम व्यक्ति का चिन्तन झलकता है श्री दवे प्रणीत अनुसंधेय खण्डकाव्यों में।

एतदर्थ साहित्यिक समीक्षा से पूर्व, एकादश खण्डकाव्यों का परिचय पूर्वक वर्ण्यविषय एवं उनका उपजीव्य यथाक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. शृंगारपरक खण्डकाव्य –

(क) ''सौन्दर्यलीलामृतम्''–

अस्मिन् मोहमयी विशाल नगरी गर्भे कुतो विश्रमः,

लीना प्रस्थ विचिन्तने तु कविता सम्भावनाऽप्यात्मनः।

विश्रान्त्यै मनसः पयोधि पुलिने प्राप्तो मनागेकदाः,

दृष्टं तत्र रसान्वितं कविह्रदा यत्तन्मया वर्णितम्।।[1]

राष्ट्र विभाजन की त्रासदी से संत्रस्त, योगक्षेम की चिन्ता करते हुये परिवार पालन हेतु अपेक्षित वित्तार्जन–अभ्येषणा की गवेषणा में कवि पं. श्रीराम दवे का पदापर्ण करॉंची से राजस्थान होते हुये मोहमयी नगरी (बम्बई) में होता है।

जहॉं संस्कृतशिक्षक के पद पर कार्य करते हुये उपार्जित वेतनादि से सश्रम जीवन निर्वाह करने लगते है। बम्बई की आवास समस्या सर्वविदित है, अतः कवि एक ही लघु आवास में चार पॉंच समवयस्क मित्रों के साथ निवास करते हुये, दैनन्दिनी सेवा आदि कार्य निष्पादन के उपरान्त सान्ध्यबेला में रसिकमित्रों के साथ भ्रमणार्थं चौपाटी पर चले जाया करते थे।

जहॉं अनिन्द्य सुन्दरियों का सौन्दर्य, ललित ललनाओं का लावण्य तथा मोहमयी नगरी की मोहनियों के माधूर्य की मधूरिमा को स्वचित्त में स्थापित कर अपने सौन्दर्य बोध को **'विबुधविप्र'**[2] की तरह

Peer Reviewed

कविता वनिता में समाहित करते हुये मानव हृदय में बसने वाले बहुतेरे भावों को कल्पना की कलम से ''सौन्दर्य लीलामृतम्'' नामक खण्ड काव्य की सर्जना की।

कवि ने यह खण्ड काव्य 1949 ई. में लिखा था, कवि को काव्य लेखन की प्रेरणा **''चौपाटी''** के चटपटी दृश्यों से, तथा जलधि–तटस्थित लावण्य–लीलास्थली पर मनसिज विलास समरांगण में स्वच्छन्द विहारिणी मनोहारिणी सरसा अपसरा की तरह, मानो विश्वसौन्दर्य सम्मेलन में, सौन्दर्य की लीला करती हुयी, ललित–लावण्य के वैभव से युक्त ललनाओं के चतुर्विध अभिनय लीलाओं से मिली थी। उसी बीज से सौन्दर्य समुपासक तथा लावण्य–वाटिका–चंचरीक युवा कवि ने **'सौन्दर्यलीलामृतम्'** रुपी कचनार वृक्ष को स्थापित किया।

काव्य का कथानक, सौन्दर्य पिपासुओं की पिपासा को संतृप्त कर सकेगा एतदर्थ कथानक प्रस्तुत है –

सौन्दर्यं शिवसत्य भाव सुभगं यत्कल्पितं सूरिभिः,

जातं तन्नवजात दूषितधियां दुर्बोध नैर्गहितम्।

ये नैषा विततऽपकीर्ति लघुता श्रृंगार भावेऽधुना,

सानोसंलभतां कदापि ललिते! काव्ये पदे मामकं।।[3]

ऋषि महर्षियों ने जिस सौन्दर्य को शिव और सत्य के साथ जोड़ा था, वह नवजात मतिकों के कुतर्क से निन्दित हो गया, जिसके कारण इस सौन्दर्य के श्रृंगार भाव में अपकीर्ति की लघुता फैल गयी है।

आज सारा संसार सौन्दर्य की खोज में उत्कण्ठित दिखाई पड़ता है। वयोवृद्ध राष्ट्र के नेता भी सुन्दरता की प्रतियोगिता में जो सुन्दरी निर्धारित मानदण्डों में खरी उतरती है, उसे ही विश्व सुन्दरी का सम्मान प्रदान करते है।

सौन्दर्य परीक्षकों द्वारा भी केशविन्यास, गौरगण्डस्थल, विम्बाधर, कुङ्मलवत्– कुचमण्डल, पीननितम्ब आदि को ही सौन्दर्य का मानदण्ड मान, सुन्दरियों का सम्मान करते है। सुन्दरी की सुषमासुधा के कण पर सारी प्रकृति मुग्ध दिखाई पड़ती है। वहीं काव्य अनुपम यशस्वी गिना जाता है, जिसमें सुन्दरी के सौन्दर्य का गुणगान किया गया हो।

Peer Reviewed

नाटक भी उसकी विलास लीला से ही रुचिकर लगता है, गीत भी वहीं मधुर लगता है, जो उसके कण्ठ से निकलता हो। वस्तुतः वे सारी कलाऐं निरर्थक सी लगती है जिसमें सौन्दर्य का संयोग सम्मिलित न हुआ हो।

कला–कुशल–शिल्पकार द्वारा सजाई गयी शिल्पकला हो अथवा चतुर चित्रकारों की चित्रकला तब तक नयनाभिराम नहीं होती है, जब तक उसमें किसी ललना का विलास विलसित न हो। वस्तुतः सौन्दर्य ही सत्य है, शिव है, तथा संसार का सार है। जब से वासनात्मक लोगों ने इस सौन्दर्य मन्दिर में प्रवेश किया है, तब से इन सौन्दर्योपासक भक्तों की कीर्ति को बड़ा आघात लगा है।

कविता–वनिता–बिहारी कवि ने सांध्य बेला में, मुम्बई की समृद्धि का मुकुर, प्रसिद्ध कामिनी–केलिप्रांगण ''चौपाटी'' स्थित ललनानिष्ठ सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते है कि मानो देश–विदेश की तरुणियाँ इस लावण्यमयी पण्यस्थल पर श्रृंगारोत्सव मनाने आयी हों, जिन्हें देखकर वीततारुण्य वृद्ध भी सहसा तारुण्य का अनुभव करने लगते है। वीर पुरुषों का धैर्य विचलित होने लगता है, संयमी पुरुषों का पौरुष विगलित होने लगता है, मानों स्वर्ग की अप्सरायें सौन्दर्य वैभव लुटाने धरती पर उतर आयी हों।

वे यौवन–दैदिप्यमान वदना, स्निग्ध केशालंकृता, उन्नत कन्दुकों को कौशेय कंचुकों में छिपायी हुयी, कमनीय–कन्धों पर उत्तरीय लटकायी हुयी, समुद्र तट पर विचरण करती हुयी, चन्द्रिका की तरह युवक चकोरों का चित्त चुराती हुयी, नेत्र में कृष्ण उपनेत्र हाथ में आतपत्र, कन्धे पर स्यूत (पर्श) लटकायी हुयी, अनावृत कटि को मटकती हुयी, मन ही मन गुनगुनाती हुयी पालित पिल्ले के डोर को थामी हुयी, चंचला अपनी चंचल दृष्टि से दर्शकों के मन को पुरजोर झंकृत करती हुयी, उन्मुक्त गगन के विमुक्त वातावरण में स्वच्छन्द विचरण करती हुयी समुद्रतटीय सुरम्य सान्ध्य को अभिराम बना रही थी।

कहीं भ्रमणशील युवतियों के अभितः पारितः युवक भ्रमरों का गुंजार तो कहीं नितान्त एकान्त में आलम्बनों का उद्दीपन, कहीं जननी द्वारा स्त्री मर्यादा का संदेश, तो कहीं उद्वाह धर्मपालना के संकेत का सम्प्रेषण, कहीं **''करबन्धने विपदा आमंत्रणम्''**[4] का चिन्तन, तो कहीं सौम्य वेशधारिणी भारतीय महिलाओं द्वारा अर्णव अर्चन, इस प्रकार धीवरकन्या, भिक्षुकयुवतियों, उन्मुक्तकामा फिरंगीवामा आदि के सौन्दर्य समागम से यह विशाल नगरी मोहमयी मोहनीबाला की तरह आगन्तुकों को मुग्ध कर रही थी। वहीं एक ओर सौन्दर्य सागर के किनारे बैठी पर्वतीया कुमारी बालु के ढेर पर, अपने हाथ में अपनी ठोढ़ी रखे, मौन टकटकी लगाये अरुणवदना तरुणी के पास कोई युवक आकर अपने नयनों की वाणी से

कहने लगा कि हे सुन्दरि! मौनावस्थित तुम्हें देखकर मेरे हृदय में कई संदेह उत्पन्न हो रहे है, तुम रुष्ट हो या तुष्ट ये मौन भंग होने पर ही हमारी उत्कण्ठा को शान्त करेगा।

दूसरी ओर महानगरी में अभिसारिकायें भी कई रंग दिखाती है। वे अपने बिखरे वालों को संवारती हुयी, गरम सांसों को उगलती हुयी, शिथिल साटिका को कटितट पर दृढ़ करती हुयी, अपने विट सहचर को एकान्त में मिलने का सन्देश भेजकर अपनी तीव्र गतिका कार से अभिसार हेतु अभिष्ट स्थान पर जा रही अभिसारिकायें एकान्त में कान्त का साक्षात्कार प्राप्त कर आकाशीय बिजली के समान ऐसे ओझल होती है, मानों निर्द्वन्द–द्वन्द को रात्रि का प्रसाद मिल गया हो। इधर कोई प्यासा मधुप, संयोगवश प्रणय बन्धन में बाधा आ जाने पर निराशा लिये एकान्त में समुद्र की धूल मसलता हुआ, पूर्वघटित प्रणय प्रसंगों को याद करता हुआ, इस स्थिति के लिये विधाता को कोसता हुआ बैठा हुआ है।

उधर कोई प्रणय वंचिता कृशांगी अपने प्रणय योग सूत्र के खण्डित हो जाने पर खिन्न मना होकर चिर संचित संवेदना को आँखों से धो रही है।

अहोविचित्रः खलुरागबन्धः, जातः सकृन्नो विजहाति भूमिम्।

वहन्यजस्त्रं भूवितस्य धारा, पयोधिरुपं भजतेऽत्र चित्रम्।।[5]

प्रेम का बन्धन भी विचित्र होता है, एक बार हो जाने पर वह उस स्थान को नहीं छोड़ता है। मानो बहती हुयी प्रेमधारा ने पृथ्वी पर सागर का रुप धारण कर लिया हो, बम्बई का यह सागर जन सामान्यों के लिये भले ही लवण युक्त हों, किन्तु लावण्यमयी ललनाओं के लिये यह, प्रेममाधूर्य सागर है। इसी सागर के किनारे वैराग्य संवेदना की झलक भी दिखाई देती है। मुण्डित केशों वाले साधु समुद्र के गाम्भीर्य पर दृष्टि डालें, भोग विलास के सुख को अस्थिर मानकर, अपने पास बैठे हुये नवदीक्षित वृद्धों को सौन्दर्य की सत्यता के आलोक में भोगवती संस्कृति के दुषित दृष्टिवालों को सम्बोधित करते हुये कहते है कि ये मूढ़ लोग इन सुन्दर ललनाओं के भोग के पीछे भाग रहे है, ये वित्तविमूढ़मति कामान्धयुवक इतने धृष्ट है कि मुग्ध भौरों की तरह युवतियों के तीखे कटाक्ष वाणों से धायल होने पर भी कमलनियों का पीछा नहीं छोड़ते। ये लोग जिस स्तन का अमृतपान कर अपने तन को अद्यतन सनातन सत्य मानते आ रहे है। उसी स्तन को दुषित दृष्टि से देखते है। ये लोग नश्वर विलास में मन को डुबोकर प्रेम को भूल गये है।

एभिर्मोहमयी विलासनगरी भोगाश्रया भाव्यते,

नैषा काम कलाप लोडित धियां बोधाश्रमे विश्रमः।

पीत्वायस्य पयोऽमृतं तनुरियं तारुण्यमालम्बते,

वीक्षन्तेऽत्र तमेवदूषित दृशा वक्षोजमेते जड़ा।।[6]

Peer Reviewed

ये लोग मन्मथ–वाटिका–वनिता की नाभि में रमण करते हुये पद्मनाभ की पूजा भूल गये है। वंशी की ध्वनि पर मोहित हरिण की तरह उस मधुर ध्वनि के पीछे तो भागते रहें किन्तु वंधीधर को भूल गये। जीवन के लिये व्याध के सामने गये, किन्तु मृत्युंजय को नहीं पहचान पाये।

''व्याधं धावसि जीवनाय कुमते! मृत्युंजयं नेक्षसे''[7]

इस प्रकार शब्दब्रह्म के रससागर में निकली सुधा के लेप से शोभायमान चौपाटी के किनारे विचरण करती हुयी वनिताओं के सौन्दर्य से मण्डित, रसिकों के संगम और वियोगियों की वेदना से वेष्टित एवं अन्त में वैराग्योदित ज्ञान से विराजित यह सौन्दर्यलीलामृतं है।

(ख) ''मेघोपालम्भनम्'' खण्डकाव्य –

'मेघोपालम्भनम्' नामक खण्ड काव्य राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा 2008 में प्रकाशित 'काव्यमंजूषा के पृष्ठ सं. 81 से 131 के मध्य अंकित है। इस खण्ड काव्य में अकाल के समय में पशुओं को लेकर इधर–उधर भटकते हुये किसानों और वियोग–व्यथित कृषक पत्नियों द्वारा मेघों को वृष्टि न करने पर 102 श्लोकों में उपालम्भ दिया गया है। कवि की शब्दात्मिका सृष्टि भी विलक्षण हुआ करती है, वो जड़पदार्थों में भी मानवोचित चैतन्य का सम्पादन करता है। उनके द्वारा पत्र–पुष्पों से युक्त वृक्षों को पुत्र–पौत्रादि वाले पुरुष परिवार के समान तथा सुन्दरी के मुखलावण्य को कमल के समान कल्पित किया जाता है। नायिका के केशों की उपमा घनघटाच्छादित मेघमाला तथा उसके दन्तावली की उपमा मुक्तावली से दी जाती है। कभी वृक्षों से लिपटने वाली पुष्पवती लताओं को कान्त का आलिंगन करने वाली कामिनियाँ बना देता है। तो कभी कामिनियों के भ्रू–विक्षेप को काम का धनुष। कभी कण्ठ का माधूर्य कोकिल की मधुर ध्वनि बन जाती है तो नाभि, कामलीला की स्थली बन जाती है। महाकवि माघ ने शिशुपालवधम् महाकाव्य में, वसन्त वर्णन में अलिदाम्पत्यों का बहुत ही सुन्दर मानवीकरण किया है। महाकवि कालिदास ने भी आकाश के बादल को विरहातुर यक्ष का दूत बना दिया।

इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी हंस–शुक आदि पक्षियों को दूत पद पर बिठा दिया है। इन्हीं परम्पराओं का अनुसरण करते हुये महाकवि पं. श्री राम दवे ने भी युगानुरुप मेघों के विविध विलासों का वर्णन किया है।

कवि को मेघोपालम्भनम् खण्डकाव्य लेखन की प्रेरणा कालिदास की कृति मेघदूत के आषाढ़ मास के मेघ की प्रकृति से मिली होगी। क्योंकि महाकवि श्री दवे ने ग्रन्थारम्भ में मेघदूत की प्रसिद्ध पंक्ति **''आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुः''** को ही अपने शब्दों में आवृत्ति की है।

आषाठस्य प्रथमदिवसादम्बरे कीलिताक्षी,

पन्थानं ते जलद! सततं वीक्षते भूमिरेषा।

धर्मोद्भूतैज्वलनसदृशैस्तप्त गात्रोग्रवातैः,

ने जानीषे गमयति कथं वासरान् त्वद्वियोगैः।।[8]

वस्तुतः 'मेघोपालम्भनम्'' नामक खण्डकाव्य का **उपजीव्य** मेघदूत है। जिसका कथानक निम्नांकितानुसार है –

मेघों की अनुकम्पा के बिना अकाल पीडित जनों की क्या दुर्दशा होती है। इसका मार्मिक वर्णन इसमें किया गया है। मरुभूमि में निवास करने वाली एक कृषक नवोढ़ा मेघ की प्रतिक्षा करते हुये वर्षा ऋतु में भी मेघ के द्वारा वर्षा न करने पर उसको उपालम्भ देती हुयी कहती है –

हे मेघ! आषाढ़ के प्रथम दिन से लगातार यह धरती आकाश की ओर टकटकी लगाये तुम्हारी राह देख रही है। गर्मी के कारण आग उगलती उग्र हवाओं से तप्तांगी यह तपस्विनी तुम्हारे वियोग में न जाने कैसे दिन बिता रही है। शून्य बादलों से सूना हो गया है। अचला का आँचल शीर्ण विदीर्ण हो गया है। वृक्ष और लताये सूख गई है। जलाशय जलहीन हो गया है। हे मेघ! देखो तुम्हारे वियोग में धरती पर चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। इधर भौतिकवादी उन्मत्त गुण्डा, तुम्हारी प्रकृति प्रिया के रुपलावण्य पर मुग्ध होकर अपने दुषित भावों से उसे पीड़ित कर रहा है। क्या इसके कारण कुपित होकर तुम अपने जल को समेट कर कहीं अन्यत्र छुपे हुये हो।

हे मेघ! आज इस धरती पर निवास करने वाले अज्ञानी लोग यज्ञीय पदार्थों से देवताओं को तृप्त नहीं करते, कहीं देवताओं ने इसी कारण तुम्हें यहाँ आने से रोक तो नही दिया है। देवतागण तो भोगवृत्ति के कारण संसार में स्वार्थी'' माने गये है, किन्तु हे मेघ तुम तो लोक कल्याण करने वाले हो।

किसी समय तुम सद्यःस्नातानिर्झरों से निर्मलांगी इस पर्वत की शिखरिणी को प्रेम भरा आलिंगन प्रदान कर, उसकी काम भावना को प्रदीप्त कर एक विट की तरह भाग जाते थे, तुम्हारी उसी कौतुक भरी लीला को देखने के लालसी कवि बड़े निराश हो रहे है। हे मेघ! जब तुम कालिदास के मेघदूत में यक्ष के दूत बने थे, तब उन्होंने तुम से कहा था, तुम ही संतप्त लोगों का सहारा हो क्या यह तथ्य मिथ्या हो जायेगा।

सन्तपप्तानां त्वमसि शरणं यद् यदुक्तं त्वदर्थे,

किं स्यान्मिथ्या तदपि सकलं कालिदासस्य दौत्ये।

दृष्टाऽवृष्टया व्यथित हृदयां भूमिमेनां विशालाम्,

चित्ते ते नोद्भवति हि तत् क्वापि कारुण्य भावः।।[9]

हे मेघ! तुम पुष्कर और आवर्तक नामक विश्वविख्यात मेघों के वंशज हो, सारे संसार को वृष्टि से तृप्त करने वाले तुम, अब क्या कुटिल किसानों से उत्कोच पाकर जल प्रदान करते हो ? क्या तुम भी दुष्टशासन में वित्तशाठ्य वाले घनाढ्य हो गये हो।

जातो वंशे भुवनाविदिते पुष्करावर्तकानाम्,

वृष्टया चक्रुर्भुवनमखिलं तर्पितं ये तु काले।

नायातः किं कुटिल कृषकोत्कोचदत्ताम्बुसारः,

किं भूपाले प्रभवति यथा वितशाढ्यो घनाढ्यः।।[10]

क्या आज का मालिन जल पीकर तुम्हारी आत्मा भी दूषित हो गई है। तुम सहसा आकाश में उमड़–धुमड़ कर आते हो और लोगों के हृदय में जलवृष्टि की आशा जगाते हो, परन्तु शीघ्र ही अपने उस रुप को समेटकर अस्त हो जाते हो। क्या तुम भी इस लोकतंत्र के शासकों की तरह लोगों से धोखा कर रहे हो।

क्या तुम भी इन्द्र से अपना अभीष्ट न पाकर कामचोर की तरह अपने कार्य से विमुख हो गये हो। हे वारिद्बन्धु! इस समय न तो यक्ष जैसे प्रणयविवश प्रेमी ही रह गये है, जो प्रिया वियोग की वेदना में प्रिया को सन्देश भेजने वाले हों। आज नानाविध भौतिक यन्त्र आ गये है, जिनके द्वारा क्षणभर में अपने प्रिय को सन्देश भेजा जा सकता है। अतः प्रणयी पुरुष कितना ही दूर क्यों न हों सन्देश भेजना कठिन नहीं होता है, इसलिए दूत के रुप में अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं होती है। हे मेघ! इस समय भौतिक भोगों से रुक्ष इस युग में पृथ्वी पर रहने वाले लोगों का लक्ष्य, काम और भोग ही रह गया है, भोगैषणा वाले लोगों के हृदय में अब प्रणय भरे स्निग्ध भाव नहीं रहें।

अतः तुम मेरी चिन्ता छोड़ों ओर पहले अपनी प्रिया पृथ्वी का ध्यान रखों। समुद्र से अपने हाथों से निकालें हुये जल का भार उठाने वाले हे पयोधर! अपनी मधुर जल धारा से इस वसुमती को धन धान्य से पूर्ण करो, उनके सन्ताप को दूर करों, इन्हें निर्झरों का सुखद स्वर प्रदान करों। यह आकाश भी सविता के

Peer Reviewed

कठोर किरणों से व्याकुल है। उसका मन भी तुम्हारें संगम के लिये उत्कठित है। अतः इसे भी अपनी प्रिया सौदामिनी और इन्द्रधनुष की शोभा से मण्डित करो।

इस दुर्भिक्ष में यह तुम्हारी प्रेयसी वसुमति भिक्षुकी की तरह जल की भीख मांग रही है, किन्तु जलदाता की प्रशस्ति पाने वाले हे मेघ! प्रिया के रुदन से तुम्हारा हृदय द्रवित नहीं होता। हे मेघ! कभी–कभी तुम अतिकोप के कारण कृष्णकाय अति भयंकर हो जाते हो। आंधी के आलिंगन से तुम्हारी बुद्धि विकृत हो जाती है। तुम गर्जना–तर्जना के साथ इस पृथ्वी पर प्रवल धारा–पात द्वारा विद्युतचण्डिका के साथ अपने चमकीले अंगों से अपना क्रोध प्रकट करते हो। तुम्हारा स्वामी इन्द्र जो देवताओं का स्वामी माना जाता है, वह भी अपनी शक्ति पर गर्व करता हुआ, क्रुद्ध होकर अतिवृष्टि द्वारा व्रज–वासियों को भयभीत करने लगा था, जिसका गर्व भगवान श्री कृष्ण ने चूर्ण कर दिया गया था।

प्रतिक्षण रुप बदलने वाले इन बादलों की लीला भी बड़ी विचित्र है। कभी तो ये आनन्द जल की धटायें बनाकर आषाढ़ के प्रथम दिन ही पृथ्वी को प्रसन्न करते हुये धरा को हरी भरी और सुन्दर बना देते है। जिससे खेतों की शोभा बढ़ जाती है। किसान प्रसन्न होते है। तालाब भी जल से परिपूर्ण हो जाता है। सूखी नदियाँ भी सलिल सुधा से तृप्ति पा जाती है। वस्तुतः वह धराधन्य है, जिसका जलाभिषेक मेघ करता है। जिसकी कोख में प्राणी प्रसन्न रहते हो, अनेक वृक्ष कन्दमूल और औषधियाँ पैदा होती हो, तथा जो सर्वदा अपने सामने बादलों की विलास लीला देखकर प्रसन्न होती रहती है।

अन्त में मेघ अपना दास्य निबन्धन प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि धन्य है वे कवीश्वर जिन्होंने मेरे लिये अपना जीवन बिता दिया। पूज्य है वे स्वर साधक जिन्होंने मेरा यशगान किया। वन्दनीय हे वे संस्कृत विद्वान जो मुझे जीमूत, अम्बुद्, वारिद् आदि सुन्दर नामों से पुकारते है, किन्तु हे वसुन्धरे! मैं क्या करुँ इस पृथ्वी पर अनेक सज्जन बन्धु हैं जो मेरे उदय होने पर खुशी मनाते है तथा वर्षाकाल में प्यासी आँखों से मेरी प्रतीक्षा करते हैं, मेरे हृदय में भी उन मित्रों के लिये बड़ी उत्कण्ठा है, किन्तु मेरी भी एक सीमा है, मैं भी इन्द्र का दास हूँ, उसके इशारे पर चलता हूँ। वह इन्द्र भी मेरे हितकारी वचन नहीं सुनता है। उसका भी नियामक भगवान विष्णु हैं। दासता का बन्धन ही कुछ ऐसा होता है कि वह श्रेष्ठ लोगों को भी नही छोड़ता है। चाहे कवि लोग अथवा प्रसिद्ध सज्जन जन पृथ्वी पर मेरी निन्दा करें किंवा अकाल में कारण विषमविपदा में पड़ी वियोगिनियाँ हमें भला बुरा कहें, सभी लोग अपने दुःख को ही रोते है। वे हमारी विषम दशा और विवशता को नहीं जानते। यह सारी सृष्टि चलायमान है। न संध्या स्थिर न उषा की प्रभा ही स्थिर है। सूर्य हो चन्द्र हो किं वा तारे हो, सभी परिवर्तनशील है। आज युग भी परिवर्तन शील हो गया है, हे बन्धु! तुम्हें भी बदलना होगा। काल की गति देखकर ही तुम्हें भी चलना होगा।

इस प्रकार बादलों की कृपा के विना धरा की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। साथ ही साथ चिरकाल से मेघ की प्रतीक्षा करती हुयी, कृषकांगना द्वारा मरुधरा की उपेक्षा करने वाले जलधर को कोसा

भी गया है एवं मरुधरा को त्याग कर अन्यत्र अधिक वृष्टि करने वाले मेघ पर जार भाव का आरोप भी लगाया गया है। इस प्रकार कहीं कहीं पर अल्पवृष्टि, अनावृष्टि, अतिवृष्टि से विविध लीला करने वाले बादलों का मानवीकरण कर मेघ को उपालम्भ दिया गया है।

(ग) वियोगशतकम् खण्डकाव्य –

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् 2056, संस्कृत वर्ष 1999–2000 में **'सर्वभाषा कालिदासीयम्'** प्रकाशन से प्रकाशित 'वियोग शतकम्' नामक खण्डकाव्य पं. श्री राम दवे की उत्तम प्रकृति की कृति है। काव्य का नायक 'आसूलाल संचेती' कवि के संमित्र थे, अतः उनके हृदय का भाव सहज ही कवि के हृदय में समाहित हो गया। मित्र के अर्धागिंनी वियोग–शोक ने उनको द्रवित किया और उनके हृदयनिर्झर से यह काव्यस्रोत उमडपड़ा जैसे आदिकवि के कोमलहृदय से **क्रोंचवध**[11] की करुणा प्रस्फुटित होकर उनकी कविता में समाहित हो गयी थी।

कवि के हृदय की सदाशयता ही कुछ ऐसी होती है, जो दूसरों के दुःखों को आत्मसात् कर काव्य का रुप दे देते हैं –

गैर के गम का अब दिल पे असर होता है।

कोई रोता है तो दामन मेरा तर होता है[12]।।

वियोगशतकम् खण्डकाव्य 'मेघदूत' का अनुगामी है, 111 मन्दाक्रान्ता छन्दों में अपने अधिवास आवास 'अल्का' से, मेघद्वारा परम–धाम–निवासिनी प्राणप्रियापत्नी को मेघ द्वारा सन्देश प्रेषण की व्यथा कथा इसमें समाहित है। जिसका कथानक कुछ इस प्रकार है :

वियोगशतकम् का कथानक –

कोई वियोगी अपनी अर्धागिंनी के निधन पश्चात् की वेदना से व्यथित, होकर अपने उसके अतिप्रिय 'अलका' नामक निवास स्थल पर एकाकी बैठा हुआ अपनी दिवंगताप्रिया को स्मरण कर रहा था। सहसा उसने आकाश में उमड़ते हुये मेघों को देखा और उन्हें देखते ही वह उन्मत्त की तरह कह उठा, आज मेरी अलका, प्रिया के विना सूनी हो गयी है। जब मैं तुम्हें आकाश में चमक दमक वाली अपनी प्रेयसी बिजली के साथ क्रीड़ा करते हुये देखता हूँ, तो मेरे आतुर मन में यौवन काल में अनुभव किये हुये विषय उद्दीप्त हो उठते हैं। वस्तुतः **"दुःखायैव प्रभवतितरा वार्द्धके पूर्व भोगः**[13]**"** अर्थात् वृद्धावस्था में पूर्वकाल के सुखद् भोगों की स्मृति बड़ी दुःख दायी होती है।

वर्षाकाल में स्निग्ध गम्भीर गर्जना वाले जल भरे बादल उन लोगों के हृदय में आनन्द उत्पन्न करते है, जिन्हें अपनी प्रिया के संग का सौभाग्य प्राप्त है। परन्तु प्रिया वियोगी मुझ जैसे मन्द भाग्य का

तो वे दिल ही जलाते रहते है। अरे, प्यारे मित्रों! जरा मेरी ओर भी देखो, मेरे हृदय की धरा प्रियावियोग से कितनी संतप्त है, जरा उस पर भी मेरी प्रिया के सन्देशों की वृष्टि करो। रामगिरि आश्रम पर बैठे मेघदूत वर्णित यक्ष का सन्देश लेकर जाते हुये वर्षा के ये बादल मेरे घर का नाम 'अलका' सुनकर यहाँ आ जाते है, किन्तु यक्ष द्वारा वर्णित वियोग–विषाद–युक्त उस यक्षकान्ता को न पाकर, वे यहाँ से शीघ्र ही लौट जाते है। मैं समझता हूँ ये बादल भी वस्तुतः खारे समुद्र का पानी पीकर जड़ बुद्धि हो गये है, इसलिये वे केवल पृथ्वी लोक का ही मार्ग पहचान पाते है, देवताओं के मार्ग का तो उन्हें पता हीं नहीं चलता, और मैं भी प्रिया की विरह वेदना में इतना पागल हो गया हूँ कि इन घुमक्कड़ बादलों से याचना करने लगा हूँ।

हे भुवनविदित पुष्करावर्तक वंश में उत्पन्न मेघ, मेरी प्रिया कहाँ गई है ? मुझे भी पता नहीं है। शायद स्वर्गलोक गई हो, जहाँ देवता गण रहते है। उस स्वर्ग लोक का मार्ग भी बड़ा दुर्गम है। वहाँ पहुँचना आप के लिये भी बड़ा कठिन है। हे प्रिये! तुम्हें क्या बताऊँ, तुम्हारे वियोग में मेरा क्या हाल हो रहा है, पूर्व प्रणय की स्मृति को स्मरण करता हुआ, दरवाजे पर खड़ा आँसुओं को बहा रहा हूँ। मैं एकान्त में बैठा हुआ तुम्हारे प्रेम की पिपासा में व्याकुल हो रहा हूँ। किशोरावस्था में किये गये विवाह की बातों को स्मरण कर रहा हूँ। जब तुम भोली–भाली सूरत वाली नई दुल्हन बनी थी, लज्जा से अपने अंगों को सिकोड़े रहती थी, तब स्वर्ण कंगन और सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुयी, घूंघट में मुख छिपाये मृगलोचना सी प्यारी नववधू लगती थी।

दृष्टः किन्तु त्वयि सुवदने! सङ्गमः प्रतिभक्तयोः

जातादिष्टया तब च विरहे यक्षतुल्या दशा में ।

येनात्मा में दयित दयिता प्रेयसी भेद शून्यः,

चित्ते पश्यत्यविरतमयं स्नेहसंदोह मूर्तिम्।।[14]

हे प्रिये! तुम्हारे अन्दर प्रेयसी का प्रेम और पत्नी की भक्ति का संगम था। सुहागिन सहेलियों के मध्य तुम्हारी सुन्दरता गर्वयोग्या हुआ करती थी, वो हेमन्त का आनन्द, शिशिर का मोदक, वसन्त का उमंग, फाल्गुन मास की जल क्रीड़ा आदि अब सारहीन प्रतीत होता है।

हे प्रिये! मैं अपने विरह की व्यथा किसे सुनाऊ, मैंने तुम्हारें साथ जिन–जिन सुखद्विषयों का रसास्वादन किया है, उन्हें प्रयत्न पूर्वक भी अपने हृदय से दूर नहीं कर पा रहा हूँ। ये वाटिका के आसन्द[15] तव गृहसखी पंजरस्थासारिका,[16] शुनकबटुक[17] (छोटापिल्ला) नवजवनिकाऽ[18]च्छादित लीला कक्ष, रम्ययुगल रचित शय्यागार[19] चारु श्रृंगारशाला आदि भी तुम्हारें वियोग में व्यथित है। हे अन्नपूर्णे! गृहिणी के बिना भी भला कोई घर होता है।

Peer Reviewed

'सत्यंलोके भणति गृहणी गेहरुयां वरेण्यां'[20]

हे प्रिये! कुटिल विधाता ने चाहे तुम्हारा दृश्यरुप हरण कर लिया हो, परन्तु तुम्हारा पवित्रप्रेम आज भी मेरे हृदय में विराजमान है। तुम्हारी मनमोहिनी अमृतलहरी सी दृष्टि आज भी मेरी स्मृति में बसी हुयी है। तुम्हारी अमृतभरी वाणी को आज भी मैं अपने कानों में सुन रहा हूँ। ये विधाता, उसे नहीं ले जा सकता।

हे प्रिये! कोई समय था जब तुम्हारा किंचित वियोग भी मेरे लिये असह्य हो जाता था परन्तु हाय! आज वहीं वियोग कुटिल विधाता ने शेषजीवन भर के लिये उपहार में दे दिया है। क्या करें, ये विरह के दिन तो अब किसी तरह बिताने ही पड़ेंगे। यह सच है कि जहाँ संयोग होता है, वहाँ कभी न कमी वियोग आता ही है।

''संयोगानां भवति सततं विप्रयोगे विरामः[21]'' हे प्रिये तुम्हारे सहयोग से फली फूली मेरी यह गृहवाटिका चाहे आज पुत्र–पौत्र और पुत्र बधुओं से हरी–भरी हो, किन्तु मेरा मानना है कि, तुम्हारे चले जाने से मेरे गृहरत्नागार में कौस्तुभमणि का अभाव हो गया है।

जैसे क्षीर सागर में सोये विष्णु के वाम भाग से लक्ष्मी अदृश्य हो गयी हो, मानसरोवर से हंसिनी कहीं अन्यत्र चली गयी हो।

मैं क्या करुँ इस वृद्धावस्था में समझदारों को स्त्री के लिये रोना भी अच्छा नहीं माना जाता है, इसलिये हृदय की इस वेदना को मैं एकान्त में बैठकर–अपनी लेखनी को सुनाता हूँ। धन्य हे वह पति जिसे तुम्हारे जैसी विशुद्धचरित्र वाली गृहलक्ष्मी मिली हो, कान्तोचित्त–विलास, मधुरवाणी, रतिमदहरारुपवती, गुणगौरवशाली, सीता सी शीलवती, पार्वती सी भाग्यशाली, मध्येक्षामा, पक्वविम्बाधारोष्ठी, शशधरमुखी, पद्मिनी–स्वरुपा तुम जैसी स्त्री इस संसार में दुर्लभ है। ऐसी नारी से वियोग किसी अभागे पुरुष का ही होता होगा।

तुम जैसी–नारी तो अपनी कार्यकुशलता से इस पृथ्वी पर, अपने घर को एक नया स्वर्ग बना देती है। ''स्वर्गचंक्रुः सदनमवनौ दुर्लभास्ता गृहिण्यः''[22]

तुम जैसी पार्वती का सानिध्य पाकर ही शिव पूजे जा रहे है, तुम जैसी लक्ष्मी का सानिध्य पाकर ही विष्णु भी पूजित हैं।

जो पुरुषों को आनन्द का अनुभव कराती हो, जो अपने पुत्र, पौत्रों से कुल की वृद्धि करती हो, यश बढ़ाती हो, जिसकी वाणी में कठोरता, बुद्धि में मन्दता, चरित्र में चपलता, गुणों में कालिमा का अभाव

हो, जो अपने गर्भ से महापुरुषों का उत्पन्न करती हो, जिसके विना पुरुष भाग्यहीन कहलाता हो। ऐसी नारी भला किसे प्रिय नहीं होगी।

'कास्या भीष्टा भवति न जनस्याङ्नासाऽनवद्या'[23]

जिसका विवाह नही हुआ हो वही आत्मवंचक पुरुष ज्ञान के दम्भ में स्त्री को सदा निन्द्यनामों से पुकारता है।

''वामावामी वदति सततं वंचकोज्ञानदम्भः''[24]

हे प्रिये! तुम्हारे अभाव में अब तो सुन्दरियों के प्रति कोई सौन्दर्य भाव ही न रहा है। चाँद भी अंगारे जैसे लगते है। मैं ही नहीं ये पुत्रवधुऐं, कृपादृष्टि से वंचित बेटे, पोते, ये दास–दासियाँ भी बड़े दुःखी दिखाई देते है। आज तुम्हारे विना घर आंगन श्रीहीन सा लगता है।

हे प्रिये! तुम अपने पुण्यप्रताप से ऊर्ध्व लोक में जा रही हो, चन्द्रसखी रोहिणी से मित्रता हो गई होगी, तुम सुन्दर सिंहासन पर बैठी होगी, अमृत की प्याला पी रही होगी, चन्द्रमा के अनुचर नक्षत्र गण तुम्हारे सम्मान के लिये हाथों में हार लिये खड़ी होगी।

गन्धर्व कन्याऐं तुम्हारे गुण और यश के गीत गा रही होंगी। इन्द्राणी ईष्या भाव से देख रहीं होंगी, कि मृत्युलोक से आयी नारी अपने प्रबल पुण्य प्रभाव से मेरा देवी पद तो नहीं छीन लेगी। मुझे डर है, कि अति उष्ण आदित्य मण्डल को कैसे पार करोगी ? हे प्रिये! तुम्हें अपने पुण्य फलों के कारण ही देवताओं की वस्ती स्वर्ग मिला है, देवता भी राग द्वेष से पीड़ित होते है। इन्द्र भी तुम्हें किसी न किसी षडयन्त्र द्वारा दूषित करने का प्रयास कर सकता है।

हे प्रिये! मैंने योगी जनों से सुना है कि पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों के पिण्ड के बीच में भी स्वर्ग है, जो पूर्व जन्म के पुण्यों से मिलता है, जिसे त्रिपुरनाथ की पत्नी की कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः तुम तो यहाँ आने के लिए दयालु हृदया अम्बा जी से प्रार्थना करना, ताकि हमारा मिलन हो सकें।

संजाते सुहृदि प्रिया विरहिते श्री आसुलालाभिधे

शब्दब्रह्मविलासलास्यमतिना संवेदना भावितम्।

काव्यं यन्नु मया वियोग शतकं काव्यात्मनागुम्फितम्,

भूयान्तत्सुभगश्रियो हि मदन देव्याः स्मृतावंजलिः।।[25]

Peer Reviewed

अन्त में कवि कहते है कि मेरे मित्र भी आसूलाल जी की पत्नी के दिवंगत होने पर, उनके विरह में उन्हें वियोगाकुल देखकर संवेदना के कारण जो भाव पुष्प मेरे हृदय में उदित हुये, उन्हें शब्द ब्रह्म का विलास मानकर मैंने 'वियोग शतकम्' नामक काव्य गुम्फित किया है। यह काव्य सौभाग्यवती दिवंगता मदन कुँवर की पुण्य स्मृति में मेरी पुष्पांजली बने, इसी भावना के साथ यह काव्य समाप्त करता हूँ।

सन्दर्भ :

1. सौन्दर्यलीलामृतम् – पुरोवाक् – पृ.सं.–29

2. वहीं – पुरोवाक् – पृ.सं.–28 कवयोविबुधा विप्राः प्रकृत्या सह योषिताम्।

अंगानां धर्म सम्बन्धं कुर्वते साधुचेतसा।।

3. वहीं – पृ.सं. 35, श्लोक – 3

4. वहीं – पृ.सं. 44, श्लोक – 14

5. वहीं – पृं. सं. 75, श्लोक – 35

6. वहीं – पृ.सं. 76 श्लोक – 3

7. वहीं – पृ.सं. 80 श्लोक – 12

8. मेघोपालम्भनम् – श्लोक सं. – 1

9. वहीं – श्लोक सं. – 17

10. वहीं – श्लोक सं. – 18

11. मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौञ्चं मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।

12. 'वियोगशतकम्' – कविनिवेदन – पृ. सं. – 11

13. वहीं – श्लोक सं. – 3

14. वहीं – श्लोक – 28

15. वहीं – श्लोक – 48

16. वहीं – श्लोक – 49

17. वहीं – श्लोक – 50

18. वहीं – श्लोक – 51

Peer Reviewed

19. वहीं – श्लोक – 52

20. वहीं – श्लोक – 53

21. वहीं – श्लोक – 56

22. वहीं – श्लोक – 72

23. वहीं – श्लोक – 85

24. वहीं – श्लोक – 89

25. वहीं – श्लोक – 109

26. ललितालहरी – पृ.सं.–13

27. ललितालहरी – श्लोक सं. – 1

28. वहीं – श्लोक सं. –

29. अपांगलीला –पृष्ठ –18, श्लोक सं.–23

30. वहीं – पृष्ठ 20, श्लोक सं.– 27

31. वहीं – युगलीला–श्लोक सं.– 1

32. वहीं –पृष्ठ –61, श्लोक सं. 12

33. वहीं – पृष्ठ–69, श्लोक – 01

34. वहीं –पृष्ठ –70, श्लोक सं. 03

35. साहित्य दर्पण द्वितीय परि. कारिका सं. 02, ''वर्णाः पदं प्रयोगार्हानन्वितैकार्थबोधकाः''।

Peer Reviewed